भाद्र कृष्ण ११, शनिवार, दिनांक - १४-०९-१९६३
गाथा-४९४ से ४९७, प्रवचन-३

भगवान का सत्य उपदेश, सच्चा सार किसे कहते हैं, यह बात तारणस्वामी इसमें कहते हैं। मोक्षमार्ग का अधिकार चलता है। तो उपदेश में मोक्षमार्ग सत्य—शुद्ध कैसा होना चाहिए, यह बात चलती है। ४९५।

सिद्धं च सव्व सिद्धं, सिद्धं अंगं च दिगंतरं दिट्ठं।
सिद्धं अर्थ तिअर्थं, समर्थ्यं समय दिस्टि अन्मोयं॥४९५॥

'सिद्धं' सिद्ध परमेष्ठी है जिन्होंने सर्वसिद्धि प्राप्त कर ली है। सिद्ध भगवान अपने स्वरूप में पूर्ण प्राप्ति कर ली हैं। ऐसा जो भाव अन्दर पड़ा है। गुप्त-गुप्त। वह गुप्त शक्ति पड़ी है सिद्ध समान। उसका आश्रय करने से सिद्धपद तुझे पूर्ण प्राप्ति होगी। ऐसा उपदेश करना, उसका नाम उपदेशशुद्धसार कहा जाता है। समझ में आया? गुप्त है न कहीं। गुप्त का है सही कहीं। ममलपाहुड़ में होगा? सूर्य समान गुप्त आत्मा, ऐसा कुछ है। ममलपाहुड़ है। पृष्ठ २९०। ममलपाहुड़, भाई तीन है। देखो, उसमें होगा। २८० पृष्ठ पर देखो उसमें होगा। ममलपाहुड़ तो बहुत है। उसकी दूसरी गाथा। ... अर्क अर्थात् सूर्य। **सूर्य समान गुप्त आत्मा से मेल करके।** देखो, है? भाई को बताओ। देरियाजी को मूल बताओ। कहाँ है? बड़े भाई नहीं आये? दूसरी गाथा है न? उसमें दूसरी गाथा का अर्थ है। देखो! .... यह दूसरी गाथा है, उसका अर्थ है। ... सूर्य समान भगवान आत्मा अन्तर गुप्त है। सिद्धपर्याय पूर्ण प्रगट है और अपने आत्मद्रव्य में गुप्तरूप से सिद्ध स्थित है। देरियाजी! शक्ति में, ध्रुव में। पर्याय में राग-द्वेष पुण्य-पाप होने पर भी, स्वरूप-स्वभाव सत्त्व ध्रुव में शक्तिरूप **सूर्य समान गुप्त आत्मा से मेल करके जिनपद का प्रकाश हुआ है।** वीतराग। यह सिद्ध शब्द कहा न अभी? सिद्ध को सर्व सिद्ध पर्याय प्राप्त हुई। कैसे? कि अपना शुद्ध आत्मा अन्दर गुप्त है, ध्रुवरूप है, उसके साथ मेल करके। 'मिलयं' है न शब्द? मेल करके जिनपद का प्रकाश हुआ है। सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग की पर्याय उससे प्रगट हुई है। राग से या पुण्य से या संयोग से या निमित्त को प्राप्त करके, वह सिद्धपद की पर्याय प्रगट नहीं होती। समझ में आया?

अब वे कर्मविजयजिन है। है न? .... कर्मविजय—कर्म की विजय कर ली है। **अब वह जिनेन्द्र परमात्मा के स्वभाव के साथ प्रगट है।** अपना सिद्धपद प्रगट हुआ है। **जिनेन्द्र की जय हो** अन्त में कहते हैं। **जिनको मुक्ति से प्रेम है।** प्रेम का अर्थ लीन है। परमात्मा सिद्ध अपनी शुद्ध निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसमें लीन है। तो मोक्षमार्ग में यह गाथा बतायी, उसका यह अर्थ है कि सिद्धे सर्वसिद्धे सर्व सिद्धपद की प्राप्ति हो गयी है। किस प्रकार?—कि अन्तर गुप्त चिदानन्द भगवान गुप्त का आश्रय—मेल करने से। राग-द्वेष और पुण्य-पाप के साथ मेल करने से नहीं। वह तो दुमेल हुआ। समझ में आया? व्यवहार होता है, जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। यह पण्डित लोग तो गजब अभी... यह निश्चय... निश्चय... यह तो निश्चय देखो उसमें यह है।

अपना स्वरूप एक समय में गुप्त पड़ा है भगवान चैतन्यचमत्कार सूर्य अखण्ड पूर्ण, उसके साथ अन्तर में एकाकार होकर, मेल करके जिन का प्रकाश हुआ है। अनन्त वीतराग की दशा सर्वज्ञ को ऐसे प्रगट हुई है। तो कहते हैं कि सिद्धं सव्व सिद्धं। उन सिद्ध भगवान ने अपनी पर्याय में पूर्ण सिद्धि की है। समझ में आया? सर्व सिद्धि प्राप्त कर ली है। वापस ... **जिन्होंने...** अंग अर्थात् द्वादशांग वाणी का ध्येय सिद्ध कर लिया है। द्वादशांग वाणी में यह कहा है कि तेरी वीतरागदशा (प्रगट कर)। कल आया था न, भाई! अपने वह चार अनुयोग। श्रावक अधिकार में। चार अनुयोग हैं। प्रथमानुयोग है—कथानुयोग है, उसका अभ्यास है, करणानुयोग है, पुण्य-पाप की क्रिया, उसका अधिकार भी शास्त्र में चलता है। चारों अनुयोग। परन्तु उसका तात्पर्य क्या? कि वीतरागता प्रगट करना। सबका तात्पर्य यह है। अमृतचन्द्राचार्य पंचास्तिकाय में कहते हैं कि बारह अंग का तात्पर्य वीतरागभाव है। अनेक प्रकार के सब कथन चले हों, परन्तु उसमें से निकालना क्या? कि राग और संयोग की उपेक्षा और त्रिकाल गुप्त चैतन्य आनन्द की अपेक्षा। वह यह दवा है। नहीं आया तुम्हारा चिरंजीवी? समझ में आया? यह दवा है, दवा। दवा करते हैं न पूरे दिन। समझ में आया?

सिद्ध अपनी द्वादशांग वाणी का ध्येय सिद्ध कर लिया है। वह इसमें है, भाई! ज्ञानसमुच्चयसार। देखो, ५६ गाथा। ५६ है।

परम समयांग सुधं च, परम तत्त्वं च सार्धयं।
तत्त्व कार्य पदार्थं च, दर्वं सुधं समं धुवं॥५६॥

उत्कृष्ट आत्मा... '**पर**' समय शब्द पड़ा है न? '**पर**' अर्थात् उत्कृष्ट। '**पर**' अर्थात् उत्कृष्ट होता है। '**समय**' अर्थात् आत्मा। **उत्कृष्ट (अपना) आत्मा यही शुद्ध द्वादशांग का सार है।** अपनी निर्मल रागरहित वीतराग पर्याय स्वभाव के आश्रय से प्रगट करना, वही शुद्ध द्वादशांग का सार है। '**अंग सुधं**' है न? '**अंग**' में शुद्ध सार यह ही है। **द्वादशांग में सात तत्त्व...** बारह अंग में भगवान ने सात तत्त्व कहे हैं। **पाँच अस्तिकाय...** कहे हैं, **नौ पदार्थ...** कहे हैं। नौ समझे? यह आस्रव में से दो निकालना। आस्रव में से पुण्य-पाप को भिन्न करने से नौ होते हैं। वरना सात होते हैं। सात तत्त्व, नौ पदार्थ, **छह द्रव्य और पंचास्तिकाय...** देखो, पीछे छह द्रव्य आये। प्रयोजनभूत। उसमें '**सार्धयं**' **प्रयोजनभूत उत्कृष्ट तत्त्व...** सबका अभ्यास करना। छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, नौ पदार्थ, सात तत्त्व। समझ में आया? शोभालालजी! यह छह द्रव्य के नाम भी न आते हों, लो! क्या करे? नौ पदार्थ के नाम भी नहीं आते।

मुमुक्षु : धर्म करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु धर्म कहाँ से करे? समझे बिना?

तो कहते हैं कि इन सबमें, इन सबमें क्या है? **प्रयोजनभूत...** '**परम तत्त्वं च सार्धयं**' है। सबमें प्रयोजनभूत यह भगवान अकेला अपना उत्कृष्ट तत्त्व है। वह बारह अंग का सार है। है? '**सुधं समं धुव' जो शुद्ध है...** जो '**समं**' अर्थात् वीतरागभावरूप है। समतारूप कहा है। वीतरागभावरूप है। **तथा अविनाशी है, उनका वर्णन है।** इन सबमें यह वर्णन है। बारह अंग में, सात तत्त्व में, नौ पदार्थ में, पंचास्तिकाय में, छह द्रव्य में कथन है सही सबका, परन्तु उसमें से (यह) निकालना। उसका वर्णन अपना स्वरूप राग विकल्प भेद से रहित अकेला चिदानन्द गुप्त आनन्दकन्द है, उसका आश्रय करना, वही उसका—बारह अंग का सार है। ऐसा उपदेश देना, उसका नाम उपदेश शुद्ध कहा जाता है। समझ में आया? देरियाजी! जरा यह थोड़ा-थोड़ा ले जाना, तुम यह बुद्धिवाले व्यक्ति हो तो। क्या चीज़ पड़ी है? तारणस्वामी क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं और

हम तारणस्वामी को मानते हैं। मानते हैं, परन्तु क्या माने?

मुमुक्षु : वह तो भगवान को माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या भगवान? ऐसा भगवान कहे, परन्तु क्या भगवान? तुझे अभी भगवान की पहिचान तो हुई नहीं। भगवान क्या कहते हैं, तत्त्व क्या कहते हैं, मार्ग क्या कहते हैं, सार क्या कहते हैं? किसकी उपेक्षा करना, किसकी अपेक्षा करना— इसकी तो खबर नहीं तो भगवान कहते हैं, वह कहाँ से आया तुझे? सेठी! भाई! कड़क बात तो है जरा।

द्वादशांग वाणी में जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, इन सात तत्त्वों का पुण्य-पाप मिलाकर नौ पदार्थों का जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छह द्रव्यों का व काल रहति पाँच अस्तिकायों का कथन है। तथा साथ ही परम शुद्ध साम्यभावरूप अविनाशी परमात्म तत्त्व का कथन है। द्वादशांग वाणी का सार तो यही है। उसमें आत्मा... वे चार अनुयोग आये थे न श्रावक अधिकार में? चारों ही अनुयोग हैं सही। बात बहुत लम्बी चलती है, उसमें चरणानुयोग में, कथानुयोग में। परन्तु अन्त में उसका सार क्या है? अन्तर चिदानन्द प्रयोजनभूत ज्ञायक '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' जो त्रिकाल ज्ञायकभाव है, उसका आश्रय करना और दूसरे का आश्रय छोड़ देना, ऐसा उपदेश का शुद्धसार भगवान ने कहा, ऐसा यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि हम कहते हैं। हमारे घर की बात नहीं करते। समझ में आया?

यह है न कहीं श्रेणिक राजा का? नहीं श्रेणिक राजा को कहा ऐसा कहीं है न? ... है? **श्री जिनेन्द्र के अपनी आत्मा... जिनेन्द्र का कोई अद्भुत पद प्रगट हुआ है।** जिनमन्दिर अर्थात् अपना मन्दिर, हों यह। **कमल... जो मोक्ष साधक कमल समान मुनिजन थे।** जैसे कमल खिलता है न? वैसे अपना आत्मा अन्तर में से शक्तिरूप जो कमल पड़ा है, उसमें एकाग्र होकर खिल जाता है, पर्याय में खिल जाता है। **प्रसन्न होकर पूछने लगे कि जिनसमुदाय में क्षोभ क्यों है?** भगवान को पूछते हैं। **उत्तर मिला कि अरिहन्त केवली भगवान तीर्थंकर का आगमन हुआ है। यहाँ भाई ने यह प्रश्न किया है...** कि किस तीर्थंकर का जन्म हुआ? किसका क्षोभ है? सब दर्शन करने को

क्यों आते हैं ? उत्तर मिला कि अरिहंत केवली भगवान तीर्थंकर का शुभागमन हुआ है, ऊपर से जन्म हुआ है। श्रेणिक महाराज को महावीरस्वामी समवसरण देखकर बड़ी प्रीति पैदा हुई।' .... समझ में आया ? यहाँ भाई ने यह प्रश्न किया है।

और महावीर भगवान को किसी के साथ राग नहीं था। वीतराग थे। पद्मनाभी को शीव... तीर्थंकर महावीर से पूछने पर विदित हुआ कि श्रेणिक महाराज के भीतर पद्मनाभी आगामी प्रथम तीर्थंकर होनेयोग्य... उठा है। उनके गर्भ में पड़ा है तीर्थंकरपद। श्रेणिक राजा को भगवान ने कहा। समझ में आया ? वह आत्मा में परमात्मपद पड़ा है, ऐसा भगवान के मुख से निकला कि यह श्रेणिक राजा भविष्य में तीर्थंकर होंगे आगामी चौबीसी में। ऐसी कथानुयोग में बात चली है, वह यहाँ दृष्टान्तरूप से दी है। समझ में आया ?

श्रेणिक में भीतर ... या पुण्य दोनों। समझ में आया ? पुण्य भी ऐसा है और पवित्रता भी ऐसी है कि जिसके गर्भ में परमात्मा पड़े हैं, वह भविष्य में होगा और पुण्य के कारण से समवसरण आदि होंगे। भगवान के मुख से ऐसी वाणी श्रेणिक को सुनने को मिली। और सभा में सुना कि यह भविष्य में तीर्थंकर होगा... है न ? अब केवली भगवान को कोई माँगने की इच्छा केवली भगवान से नहीं रही। उन्होंने अपने भीतर क्षायिक समकित के साथ आत्मज्ञान में रमणता पाली। क्षायिक समकित लिया। देखो, कल पूछते थे न भाई ! क्षायिक समकित भगवान के समीप में होता है। अकेले पंचम काल में भगवान नहीं तो क्षायिक नहीं होता। देखो, है न इसमें ? ... अन्दर में वास्तव में तो अन्दर की रमणता ऐसी प्राप्त की, उसमें से निकाला भाई। शीतलप्रसाद ने निकाला अर्थ में से। कि उन्होंने क्षायिक समकित प्राप्त कर लिया है। समझ में आया ? और स्वयं वीतरागभाव के प्रकाश की रमणता को पा चुके हैं। भगवान तो पा चुके हैं। तुझे भविष्य में पूर्ण वीतरागता हो जायेगी, ऐसी भगवान के मुख से निकली हुई बात है। ऐसा उपदेश श्रेणिक को भगवान ने कहा। समझ में आया ? उपदेश की शैली कहीं आयी थी। यह तो दूसरी बात है। उपदेश कहीं दिया, ऐसा है। श्रेणिक को उपदेश दिया। पहली गाथा है न ? दूसरी गाथा है।

....

...'मैं पायो जिनवर आपनो, मैं पाये स्वामी आपनो। ... मैं पाये चरण जिन आपनो।' अपना चरण स्वभाव है। 'मैं पायो' भगवान की वाणी में ऐसा आया था, ऐसा सुनकर पाया। देखो, 'इन्द्र को या इन्द्रभूति गौतम गणधर को' दूसरी गाथा, भाई! मूल पाठ में है न? ... 'और धर्मेन्द्र को' यह धर्मेन्द्र। 'गौतम गणधर को और श्रेणिक राजा को जो धर्म का उपदेश दिया था, वह धर्म से आप पूर्ण हो।' भगवान को कहते हैं कि प्रभु! आपने जो उपदेश दिया था, वही दिया था, वह आपके पास पूर्ण है। 'आप आत्मारूपी कमल का अनुभव करते हुए रत हैं' पूर्णानन्द की प्राप्ति। कमल जैसे खिलता है और 'संकोच में हो कमल तब तो शक्तिरूप था।' पर्याय में जब हजार पंखुड़ी से कमल प्रगट हुआ, ऐसा अपना पारिणामिकभाव शक्तिरूप तो अन्दर पड़ा है। शक्तिरूप पारिणामिकभाव गुप्तरूप से शक्तिरूप, उसे पर्याय में एकाकार होकर प्रगट किया। उसमें आप रत हो। 'आप तारण तरण कमल हैं, अनन्त आनन्द में मग्न हैं। आपने परमात्मपद के साथ मोक्ष पाया है।' ऐसे आपने इन्द्र और गणधर के निकट कहा था, वह आपने प्राप्त किया है। शोभालालजी! यह इन्द्र और गणधर को श्रेणिक राजा के पास जो मार्ग कहा, वह मार्ग भगवान ने प्राप्त किया है, वही मार्ग दुनिया को कहा है। समझ में आया? हो गया न यहाँ? ५६वीं गाथा का ज्ञानसमुच्चय में आ गया।

अब यहाँ चलता है, देखो! **द्वादशांग वाणी का ध्येय सिद्ध कर लिया है...** ४९५। हे नाथ! परमात्मा और यह कहते-कहते चलता है तो मोक्ष का मार्ग, परन्तु कहते हैं कि द्वादशांग का सार तुमने सिद्धपद प्राप्त कर लिया है। ऐसा अपना सिद्धपद अन्तर स्वभाव में प्राप्त करना, वही मोक्षमार्ग है। उसे प्राप्त करना, उसका नाम मोक्षमार्ग है। दूसरा कोई राग को प्राप्त करना, व्यवहार को, निमित्त को, संयोग को प्राप्त करना (वह मोक्षमार्ग नहीं)। वह आता है, जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य तो अपना सिद्धपद और त्रिकाल गुप्त स्वभाव है, उसकी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान करके अनुभव-वेदन करके प्रगट पर्याय वीतरागता प्राप्त करना, वह द्वादशांग का सार कहा गया है। कहो, समझ में आया?

और '**दिगंतरं सिद्धं**' अब यह ज्ञान की महिमा जरा कहते हैं। **सर्व लोकालोक**

को ज्ञान द्वारा जान लिया है... केवलज्ञान में लोक और अलोक, तीन काल, तीन लोक सब एक पर्याय में जान लिया है, वही मोक्षमार्ग का सार है अथवा मोक्षमार्ग का फल है। समझ में आया? मोक्षमार्ग का फल कोई ऐसा नहीं कि स्वर्ग में गया और इन्द्रपद मिला और सर्वार्थसिद्धि में गया। यह मोक्षमार्ग का फल नहीं है। यह तो बीच में राग आता है, उसके बन्ध का फल है। अपना केवलज्ञान सूर्य भगवान में एकाकार होकर आपने लोकालोक (जान लिया)। लोकालोक है या नहीं? सर्वज्ञ भगवान जानते हैं, दुनिया में है कहीं लोकालोक? लोक चौदह ब्रह्माण्ड, अलोक अनन्त-अनन्त। चौदह ब्रह्माण्ड में छह द्रव्य पड़े हैं, पंचास्तिकाय पड़े हैं, वह सर्वज्ञ भगवान के अतिरिक्त दूसरे में होता नहीं। जिनवर परमात्मा त्रिकाल जो सर्वज्ञ ने कहा श्रेणिक, इन्द्र के निकट, वह उन्होंने केवलज्ञान में जाना, वही यहाँ कहा। **'दिगंतरं सिद्धं'** लोक और अलोकाकाश सबको जान लिया है। समझ में आया?

'सिद्धं अर्थ तिअर्थं' पदार्थ। पदार्थ में पदार्थ सार वह आत्मा है। समझ में आया? **सिद्ध परमात्मा ने अपने प्रयोजनीय रत्नत्रय स्वरूप को प्राप्त कर लिया है। 'अर्थ तिअर्थं',** पदार्थ में पदार्थ हो तो आत्मा एक पदार्थ है। ऐसा पूर्णानन्द पदार्थ आपने प्राप्त कर लिया। ऐसा हमारा आत्मा तुम्हारे साथ मिलता है क्या? हम आदर्शरूप से आपको देखते हैं कि आपमें राग नहीं, पुण्य नहीं, विकल्प नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं। तो आदर्शरूप से .... हमारे में भी नहीं। ऐसी अपने अन्तर में दृष्टि और रमणता करता है तो हमको भी मोक्षमार्ग से सिद्धपद प्राप्त होगा। दूसरे पद से प्राप्त होगा नहीं। कहो, समझ में आया?

'समर्थ्यं समय दिस्टि अन्मोयं।' सामर्थ्य अर्थात् वीर्य लिया है। **उनकी आत्मा में ऐसा वीर्य प्रगट है कि वे 'अन्मोयं'** अर्थात् वहाँ अनुमोद का अर्थ मोद किया है। मोद अर्थात् आनन्द। मोद, मोद का अर्थ आनन्द। प्रमोद आता है। प्रमोद कहो, आनन्द कहो, मोद कहो। यह अनुमोद। आत्मा पूर्णानन्द था अन्तर में, उसे अनुसरकर मोद अर्थात् आनन्द प्रगट किया है। समझ में आया? परमानन्द की दशा उन्होंने प्रगट कर ली। वे आनन्दमय दृष्टि को रखनेवाले हैं। आपके पास तो आनन्दमय दृष्टि है।

सिद्ध भगवान ने रत्नत्रय धर्म का सार प्राप्त कर लिया है। आत्मा से परमात्मा हुए हैं। देखो, आत्मा से परमात्मा हुए हैं। कोई व्यवहार विकल्प से या निमित्त से हुए नहीं। **नित्य परमानन्द में मग्न हैं।** आप तो अनन्त वीर्य से परम मग्न हो **और अनन्त वीर्य के धारी हैं।** ऐसा ही हमारा स्वभाव आपने बताया। आपने पर्याय प्रगट की वही हमको उपदेश दिया, ऐसा आगे कहेंगे। हमारी पर्याय ऐसी प्रगट हुई, वह हमको आपने तो उपदेश किया। ऐसी पर्याय स्वभाव के आश्रय से प्रगट करो, ऐसा आपका उपदेश है। दूसरा उपदेश है नहीं। समझ में आया?

४९६। मिथ्यात्व जैसा... है कहीं। मिथ्यात्व जैसा दुःख नहीं और समकित जैसा... कहो, देरियाजी! महासिद्धान्त। '**मिथ्यात्वं परमं दुःखं**' निर्धनता दुःख नहीं, रोग दुःख नहीं। ऐई! सेठ! रोग दुःख नहीं, निर्धनता दुःख नहीं, सधनता सुख नहीं, निरोगता सुख नहीं। '**मिथ्यात्वं परमं दुःखं, सम्यक्त्वं परम सुखं,... शुद्ध सम्यक्सारभयं।**' २९६। मिथ्यादर्शन परम दुःख का कारण है। वह तो ... मिथ्यात्व परमं दुःखं। यहाँ तो तारणस्वामी ने कारण-फारण भी नहीं (ऐसा लिया है)। .... मिथ्यात्व परमं दुःखं। भगवान आत्मा एक समय में चैतन्यसूर्य भगवान पूर्णानन्द का कन्द, उसकी विपरीत श्रद्धा, राग और पुण्य और निमित्त और संयोग से मुझे लाभ होगा, मैं अल्पज्ञ हूँ, मैं राग का करनेवाला हूँ, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वही दुःख है। देरियाजी!

निर्धनता वह दुःख नहीं, रोग दुःख नहीं, बेइज्जती दुःख नहीं, सन्तानहीनता दुःख नहीं। वांझिया समझते हो? पुत्र न हो वह। वांढा। वांढा समझे? स्त्री न हो। वह दुःख नहीं। मिथ्यात्व परमं दुःखं। अपना शुद्ध आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु से सात तत्त्व, नौ तत्त्व पदार्थ इत्यादि की विपरीत मान्यता, विपरीत मान्यता (वह दुःख है)। फिर बाह्य त्यागी हो। योगी हो, जंगल में बसनेवाले नग्न आदि हो, समझ में आया? या दिगम्बर नग्न मुनि अट्ठाईस मूलगुण को पालनेवाला जैन साधु हो, परन्तु उससे मुझे धर्म होता है, ऐसी दृष्टि जहाँ राग के ऊपर पड़ी है, ऐसा मिथ्यात्व है तो कहते हैं कि वह परम दुःख है। ओहोहो! यह दुःखी? जंगल में बसे, स्त्री नहीं, परिवार नहीं, कुछ नहीं, आहार-पानी ले परन्तु एक ... खा ले, निर्दोष आहार-पानी, भिक्षा के लिये जाये महीने के

अपवास हों, निर्दोष आहार-पानी ले। दृष्टि में परमानन्द प्रभु आत्मा नहीं। दृष्टि में रही है अल्पज्ञता या राग या संयोग। उसके अस्तित्व का स्वीकार किया, अपने पूर्णानन्द के अस्तित्व का स्वीकार छोड़ दिया। ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। कहो, सेठ! यह तुम्हारे पैसे से सुख नहीं कहा। ऐई! शोभालालजी! ऐसा कहते हैं कि तारणस्वामी के पास पैसा नहीं था तो ऐसा ही कहे न! ऐसा कहा है ? ऐसा नहीं। पैसा पैसे के पास। वह पैसे में तो दुःख भी नहीं और सुख भी नहीं।

यहाँ तो आत्मा आनन्दमूर्ति पूर्णानन्द प्रभु, उसका विपरीत अभिप्राय। मिथ्यात्व के अनेक प्रकार हैं। गृहीत मिथ्यात्व, अगृहीत मिथ्यात्व, एकान्त मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व, ऐसे मिथ्यात्व के बहुत भेद हैं। सब मिथ्यात्व के जो परिणाम, वही परम दुःख है, उत्कृष्ट दुःख है। समझ में आया ? और सम्यक्त्वं परमं सुखं। भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द अनन्त गुण का एकरस रूप ऐसी अन्तर की दृष्टि सम्यक् हुई, अनुभव हुआ, सम्यग्दृष्टि, वह परम सुख। बाहर में फिर हरिजन हो, नारकी हो, स्वर्ग का देव भवनपति में हो, तिर्यंच में पशु हो। वह सम्यक्त्वं परम सुखं। अपना शुद्ध प्रभु राग से निराला अन्तर में प्रतीति दृढ़ श्रद्धा अनुभव में हुई, वह परम सुखी है। बाहर में निर्धनता हो, पच्चीस रुपये वेतन भी न मिलता हो, शरीर काला हो, इज्जत कुछ न हो, मकान-बकान रहने के लिये न हो, तुम्हारे जैसा बँगला बड़ा। सेठ! तो भी कहते हैं कि वह परम सुख है। बराबर है ? महेन्द्रभाई! परम सुख है। बाहर में क्या सुख-दुःख है ? मनसुखभाई! आहाहा!

'मिथ्यात्वं परमं दुःखं, सम्यक्त्व परमं सुखं,...' ... इसलिए मिथ्यादर्शन का त्याग करना और सम्यक् सारभयं। सम्यग्दर्शन को अपना साथी बनावे। अपना साथी सम्यग्दर्शन को बनावे कि जिससे अपना सुख होकर पूर्णानन्द की प्राप्ति हो। उसकी तो कीमत नहीं होती। मिथ्यात्व क्या और सम्यक् क्या ? उसकी कुछ खबर नहीं होती। जरा बाहर का राग त्याग किया, राग मन्द हुआ, बाहर पुण्य प्रगट हुआ, लाखों लोग माने, ओहोहो! वीतरागो सुखी, आता है न ? ... ऐगंत सुखी मुनि वीतरागी। क्या ? त्यागी होकर बैठे, वे वीतरागी मुनि। धूल में भी नहीं। धर्म का त्यागी है वह। समझ में

आया? कहते हैं कि मिथ्यात्व समान दु:ख नहीं, समकित समान सुख नहीं। ओहो! तारणस्वामी पुकार करते हैं, देखो! अरे आत्मा! .... यह मिथ्यात्वदृष्टिपने को छोड़ दो और ... शुद्ध सम्यग्दर्शन को साथ में लो कि जिससे ... तुझे पूर्ण केवलज्ञान प्राप्त हो जाये। समझ में आया? बहुत सरस बात है। समझे? यह त्याग की बात थी न इसलिए। ... ज्ञानसमुच्चयसार में है न त्याग। कितने पृष्ठ पर है? ... ३६। देखो। यह त्याग क्या कहते हैं। पृष्ठ-३६, गाथा-६६। ज्ञानसमुच्चयसार। है? लिख लेना। भाई! सब गाथा सार-सार आती है, हों! सार-सार निकालते हैं। क्या कहते हैं, देखो! तारणस्वामी कहते हैं कि प्रत्याख्यान पूर्व में क्या कहा है? भाई! यह प्रत्याख्यान पूर्व है न। चौदह पूर्व है चौदह पूर्व। दृष्टिवाद में चौदह पूर्व है। तो चौदह पूर्व में ... एक-एक में लोकबिन्दु ... उसमें प्रत्याख्यान पूर्व में क्या कहा है, उसका सार क्या है, यह बात करते हैं। ६६।

प्रत्याषानं च पूर्वं च, परोष्यं प्रत्यष्यं धुवं।
प्रत्याष्यानं ममलं सुधं, कर्मं षिपति बुधै जनैः ॥६६॥

प्रत्याख्यान नामा पूर्व में परवस्तु के त्याग का वर्णन है... भगवान का वर्णन प्रत्याख्यान पूर्व में त्याग का वर्णन है। **'परोष्यं प्रत्यष्यं धुवं।' यह त्याग परोक्ष व प्रत्यक्ष दो प्रकार का है,...** एक परोक्ष त्याग, एक प्रत्यक्ष त्याग। देखो। **जिसमें प्रत्यक्ष त्याग निश्चय त्याग है...** यह सच्चा त्याग है। **'प्रत्याष्यानं ममलं' प्रत्यक्ष त्याग निर्मल शुद्ध है....** कौन सा त्याग? राग और विकल्प का अभाव होकर स्वरूप में आनन्द की स्थिरता की प्राप्ति हो, उसका नाम राग का, विकार का अन्तर रमणता में त्याग हुआ, वही निश्चय त्याग है। समझ में आया? कुटुम्ब-कबीला छोड़ दिया, नग्न हो गया, त्याग हो गया तो निश्चय त्याग हो गया, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? निश्चय त्याग तो भगवान पूर्णानन्द की डली—गाँठ उसमें राग के विकल्प उत्पन्न न हों, निर्विकल्प स्थिरता में अन्दर लीन हो जाना, उसे यहाँ तारणस्वामी प्रत्यक्ष निश्चय त्याग कहते हैं। देरियाजी!

'प्रत्याष्यानं ममलं' प्रत्यक्ष त्याग निर्मल शुद्ध है.... 'कर्मं षिपति बुधै जनैः' यह बुद्धिमानों के कर्मों का क्षय करता है। अनुभव द्वारा। परोक्ष त्याग में तो राग की मन्दता है, राग की मन्दता। जरा व्यवहार त्याग। अशुभ राग का त्याग, उसमें बाह्य निमित्त से

छूट गया। वह राग की मन्दता व्यवहार त्याग है। उसमें तो पुण्यबन्ध होता है। समझ में आया? पंच महाव्रत के विकल्प आदि आते हैं, वह व्यवहार त्याग है। व्यवहार त्याग, वह पुण्यबन्ध का कारण है... और अन्तर में रागरहित चिदानन्द स्थिरता की रमणता जमती है, उसमें राग के अंश की पुण्य की उत्पत्ति भी नहीं होती, ऐसी दशा को प्रत्याख्यान पूर्व में श्री भगवान त्रिलोकनाथ देवाधिदेव ने निश्चय त्याग कहा है। तारणस्वामी कहते हैं कि ऐसे पूर्व में ऐसा कहा है, ऐसा हम कहते हैं। कहो, देरियाजी! वस्त्र बदल दिये और हो गये त्यागी। (ऐसा नहीं है।) वाँचे तो खबर पड़े न!

चौदह पूर्व में प्रत्याख्यान नाम के पूर्व में पापों का त्याग कैसे हो, इसका यम नियम रूप से कथन है। यह त्याग दो तरह का है—एक परोक्ष या व्यवहार प्रत्याख्यान, दूसरा प्रत्यक्ष या निश्चय प्रत्याख्यान। व्यवहार त्याग में आहार त्याग, रस त्याग आदि किया जाता है, उसको पुण्य कर्म का मुख्यता से बन्ध होता है। मुख्यरूप से यह ही है। यह ही है, ऐसा। **निश्चय प्रत्याख्यान में केवल अपने एक शुद्धात्मा के सिवाय और सर्व पर पदार्थों का त्याग किया जाता है। जिसमें आत्मानुभव पैदा हो जाता है। यही वह ध्यान की अग्नि है, जिससे भेदज्ञानी महात्माओं के कर्मों का क्षय होता है।** निश्चय त्याग से कर्म का (क्षय होता है)। निश्चय का अर्थ? निर्विकल्प रागरहित स्वरूप की रमणता का नाम निश्चय त्याग, निश्चय प्रत्याख्यान कहा जाता है। कहो, बराबर है? नीचे है, देखो!

नन्तानंत स्वयं दिस्टं, धरयंति धर्मं, ध्रुवं।
धर्म सुक्लं च ध्यानं च, सुध तत्त्वं सार्धं, बुधैः ॥६७॥

यह भाषा ली है। नियमसार में आता है न भाई? धर्म और शुक्ल, दोनों। पंचम काल में नहीं। अब सुन तो सही। ऐसा कि ऐसा क्यों कहा? अभी तो शुक्लध्यान है नहीं। यह तो नियमसार में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान ध्याना। है नहीं उसे किसलिए कहते हैं? अब सुन तो सही। पहले दृष्टि तो कर कि धर्म और शुक्लध्यान हो सकता है। आत्मा करनेवाला है, उसमें कोई दूसरा करनेवाला नहीं। चौथा काल आयेगा और काल आयेगा और संहनन मजबूत मिलेगा, तब शुक्लध्यान होगा, ऐसा नहीं। शुक्लध्यान स्वयं से होता है, यह सिद्ध करना है। समझ में आया?

देखो, **बुद्धिमान भेदज्ञानी शुद्ध आत्मतत्त्व का साधन करते हैं... 'बुधैः सुध तत्त्वं सार्धं'** है न? **वही धर्मध्यान व शुक्लध्यान....** साध्य में साधन क्या? कि **धर्मध्यान व शुक्लध्यान का अभ्यास है...** यही ध्यान है, यही त्याग है और यही साधन है। धर्मध्यान कोई विकल्प नहीं। कोई कहते हैं न। ... धर्मध्यान के भेद? वह भेद है, वह विकल्प विकार करता है, वह अलग वस्तु है, वह मूल धर्मध्यान नहीं, व्यवहार धर्मध्यान है। व्यवहार अर्थात् पुण्यबन्ध का कारण है। अन्तर चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द में दृष्टि देकर लीन होना, उसका नाम भगवान धर्मध्यान कहते हैं। समझ में आया?

उस ध्यान में... 'नन्तानंत स्वयं दिस्टं' अनन्तानन्त गुणों का धारी आत्मा स्वयं अनुभव में आता है.... देखो, समझ में आया? ध्यान में क्या विषय आया? अनन्तानन्त गुण का धारी। एक द्रव्य, मेरे अनन्त... अनन्त... अनन्तानन्त गुण। एक समय में मेरा एक आत्मा अनन्तानन्त गुण का धारी। अनन्त शक्तियाँ। अनन्त द्रव्यों के बीच रहता है, अनन्त पदार्थों के बीच रहने पर भी अपना सत्त्व अस्तित्व कभी खोया नहीं। पर से अन्यत्व अनन्त धर्म आदि और अनन्त गुण आदि धर्म का धारी आत्मा अपनी दृष्टि श्रद्धा-ज्ञान में आता है। कहो, ऐसे एक आत्मा में अनन्तानन्त गुण हैं, वे कहाँ होंगे सर्वज्ञ के अतिरिक्त? जैन परमेश्वर के अतिरिक्त यह बात तीन काल में कहीं नहीं है। एक निगोद का इतना शरीर, उसमें असंख्य शरीर, एक शरीर में अनन्त जीव, एक जीव में अनन्तानन्त गुण, एक-एक गुण की एक-एक पर्याय और एक-एक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद। ... सेठ कल कहते थे... समझ में आया?

एक आत्मा ऐसे शरीर में देखो तो एक इतना शरीर, उसमें असंख्य शरीर औदारिक। एक टुकड़ा लो आलू का, कन्दमूल का, मूला का, मूला का। कांदा होता है न सफेद, उसमें असंख्य औदारिकशरीर। एक औदारिक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुणे जीव। एक जीव में अनन्तानन्त गुण। देखो, क्या कहते हैं? देरियाजी! एक जीव में अनन्तानन्त गुण, ऐसा सम्यग्दृष्टि को श्रद्धा-ज्ञान में आता है। और एक गुण की एक समय में एक पर्याय और एक पर्याय के भाग करो अविभाग प्रतिच्छेद तो एक पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद है। यह जरा सूक्ष्म बात है। समझ में आया? ऐसे

अनन्तानन्त गुणों का धारी आत्मा स्वयं अनुभव में आता है.... है न? '**नन्तानंत स्वयं दिस्टं**' ऐसा है न पाठ? देखो! '**नन्तानंत स्वयं दिस्टं**' स्वयं कैसे लिया है? कि अपना आत्मा पूर्ण अनन्त गुण का धारी स्वयं अनुभव में आता है। कोई विकल्प के आश्रय से, कुछ पर की अपेक्षा रखकर अनुभव में आता है, ऐसा नहीं है। स्वयं अपनी अपेक्षा रखकर अनन्तानन्त गुण का धारी दृष्टि—प्रतीति में आता है।

मुमुक्षु : महाराज! अनन्तगुण का धारी या अनन्तानन्त गुण?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्तानन्त कहो या अनन्त कहो, वह तो अनन्तानन्त है। बहुत संख्या है। एक वस्तु है, वहाँ अनन्तानन्त परमाणु है या नहीं दूसरे? दूसरे अनन्तानन्त आत्मा हैं या नहीं? तो उससे रहित है या नहीं? तो एक-एक में अनन्तानन्त अन्यत्व धर्म पड़ा है। यह जरा सूक्ष्म बात है। ऐसे अनन्तानन्त गुण एक आत्मा में पड़े हैं। ऐसे-ऐसे अनन्त आत्मा हैं, ऐसा सम्यग्दृष्टि को प्रतीति में आता है। अज्ञानी को प्रतीति में नहीं आता। समझ में आया? अभ्यास करे नहीं, विचार करे नहीं, मनन करे नहीं और अकेले बाहर में गोते खाये और ऐसा किया और ऐसा किया और ऐसा लिया और ऐसा दिया। मोतीरामजी! अभी तक ऐसा किया या नहीं? प्रतिमा ली। सात प्रतिमा ली। ले लो प्रतिमा। परन्तु प्रतिमा कहाँ से आयी? गृहस्थ व्यक्ति है, वृद्धावस्था हो गयी, दस पुत्र हैं। नौ पुत्र के विवाह किये। एक पुत्र ब्रह्मचारी रहा—बालब्रह्मचारी। दो हजार एकड़ तो जमीन है। बड़ा गृहस्थ है। अब निवृत्ति ले लो। ले लो प्रतिमा। परन्तु कहाँ से आयी प्रतिमा?

मुमुक्षु : महाराज ने दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : महाराज ने दी। महाराज को खबर नहीं कि प्रतिमा कैसे आती है। समझ में आया?

एक समय में आत्मा अनन्तानन्त गुण का पिण्ड ध्रुव पड़ा है। उस ध्रुव पर अभेद दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे उपाय से होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! '**धरयंति धर्मं, धुवं।' जो ध्यान निश्चय आत्मधर्म में स्थापित किया है।** देखो, '**धरयंति धर्मं, धुवं।**' अन्तर स्थिर ध्रुव आत्मधर्म में (ध्यान) स्थापित किया

है। राग में और विकल्प में ध्यान है, उसे ध्यान नहीं कहा जाता। निश्चय धर्मध्यान यही है। नामस्मरण करना, भक्ति करना, ऐसा करना णमो अरिहंताणं.... णमो अरिहंताणं.... यह धर्मध्यान नहीं। क्या करना?

मुमुक्षु : अभी तक ऐसा ही बताया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : बताया था और तुमने अभी तक ऐसा मान लिया था। ऐसा माना था या नहीं? किसने ऐसा माना था? तुमने। **जो ध्यान निश्चय आत्मधर्म में स्थापित किया है।**

भावार्थः—ज्ञानीजन धर्मध्यान व शुक्लध्यान दोनों में पर-पदार्थ से विमुख होकर, एक अपने शुद्ध आत्मध्यान का अभ्यास करते हैं, यही वास्तव में मोक्ष मार्ग साधक धर्म है, जो साधक जो निज स्वाभाविक अनन्तगुणों के धारी आत्मा में स्थापित कर देता है। ..... किसी जगह थोड़ा अन्तर है, परन्तु बात रखी है जैन की। दूसरे के साथ कुछ मेल नहीं किया। दूसरों ने तो बहुत गड़बड़ी की है लेखन में। क्या आया देखो, यह ४९५ गाथा हुई।

४९६। उपदेशशुद्धसार।

तारन तरन समर्थं, उवइट्ठं इस्ट दिस्ट सुद्धं च।
अन्मोयं सहकारं, उवएसं विमल कम्म गलियं च॥४९६॥

क्या कहते हैं? सिद्ध भगवान का स्वभाव तारणतरण है। ऐसे अपना स्वभाव तारणतरण है, ऐसा कहते हैं। **और वे अपने निज शुद्धात्म भावों के द्वारा संसार से पार हुए हैं।'** सिद्ध भगवान अपने शुद्ध उपयोग की परिणति से संसार से पार हुए हैं। **वही स्वभाव दूसरों को भी तारने में समर्थ है।** समर्थ का अर्थ दूसरे को लक्ष्य कराते हैं कि हमारी पर्याय हमारे आश्रय से इतनी निर्मल हुई तो तुम भी इस प्रकार से तुम्हारे आश्रय से प्रगट करो। यह ही उनका उपदेश कहा जाता है। वाणी भले न हो। समझ में आया? **वही स्वभाव दूसरों को भी तारने में समर्थ है। दूसरे उसी स्वभाव को पाकर संसार से पार हो जाते हैं।** सिद्ध भगवान का लक्ष्य करके जो उनमें है, वही मुझमें है। जो उनमें से निकल गया, वह मुझमें नहीं। सिद्ध में जो नहीं, वह मुझमें नहीं; सिद्ध में जो है, वह

मुझमें है। ऐसे आदर्श सिद्ध भगवान को अन्तर में बनाकर जो **सिद्ध भाव को पाकर संसार से पार हो जाते हैं। वह स्वभाव की दृष्टि करके लीन होकर अपनी पर्याय को पूर्णानन्द की प्राप्ति कर लेते हैं।**

'दिस्ट सुद्धं' देखो, अब कहते हैं। **वह अपने शुद्ध स्वभाव से इसका उपदेश दे रहे हैं....** उपदेश देने का अर्थ क्या? कि पूर्णानन्द की प्राप्ति होती है। भाई! देख लो। हमारा पूर्ण स्वभाव प्रगट हुआ, ऐसा तुम्हारा है। ऐसा तुम प्रगट करो तो हमारा उपदेश यही आया। समझ में आया? उपदेश के देनेवाले भी क्या कराते हैं? लक्ष्य कराते हैं। सिद्ध भगवान में पूर्ण आनन्द, अनन्त ज्ञानादि प्रगट हुए तो कहते हैं कि लक्ष्य कर ले। ऐसी दशा होना, उसका नाम परमात्मा है और वह दशा अन्तर में से आती है। शुद्ध उपयोग द्वारा, रमणता द्वारा वह दशा प्रगट होती है। शुभ और अशुभ, पुण्य-पाप से वह प्रगट नहीं होती। समझ में आया? शुभाशुभभाव का है कहीं? त्रिवेणी में डाला है, नहीं? त्रिवेणी में है न कहीं शुभाशुभभाव का। त्रिभंगी सार आठवाँ पृष्ठ। आठवाँ श्लोक है।

... शुभ की भावना करने से शुभभाव होता है। उस पुण्य भाव से तो शुभभाव होता है। अशुभभाव में ठहरने से अशुभभाव होता है। वह सब वास्तव में तो अशुद्ध है। शुभ और अशुभभाव, दोनों अशुद्ध हैं। ... और मिथ्यात्व से और समकित से मिला हुआ मिश्रभाव है। किंचित् श्रद्धा सच्ची और कहीं खोटी, ऐसा मिलकर ऐसे तीन प्रकार के भाव कर्म आस्रव के कारण हैं। देखो, क्या कहते हैं? शुभ और अशुभभाव कर्म आस्रव के कारण हैं। क्या? शुभ पंच महाव्रत के परिणाम, बारह व्रत के परिणाम मुनि को होते हैं, परन्तु वह कर्म के आस्रव का कारण है। समझ में आया? त्रिभंगी। ... आस्रव आता है। नये परमाणु आते हैं। उसमें कुछ शुद्धि होती नहीं। शुभभाव हो या अशुभ हो, दोनों को अशुद्ध कहते हैं। और अशुद्ध से कर्म के दल आते हैं। परमाणु बँधते हैं, उसमें आत्मा के अबन्ध परिणाम नहीं होते। बहुत स्पष्टीकरण किया है परन्तु कोई ... मिश्र अर्थात् मिथ्यात्वभाव। मिथ्या—मिश्र दृष्टि। मिश्र दृष्टि है न, वह भी आस्रव का कारण है। अथवा शुभाशुभ परिणाम एकसाथ थोड़े ... वह आस्रव का कारण है। उसमें कोई

संवर-फंवर है नहीं। संवर और निर्जरा, वह तो अपने शुद्ध आत्मा का अन्तर ध्येय, दृष्टि और अवलम्बन करने से निर्मल पर्याय होती है, उसका नाम संवर, निर्जरा है। शुभ और अशुभभाव दोनों आस्रव हैं। देरियाजी! थोड़ा शुभ-अशुभ ... राग की मन्दता है और थोड़ा... परन्तु वह भी आस्रव का कारण है। समझ में आया?

देखो, क्या कहा? कि **दूसरे उसके स्वभाव को पाकर संसार से पार हो जाते हैं। 'उवइट्ठं इस्ट दिस्ट सुद्धं च' वह अपने शुद्ध स्वभाव से इसका उपदेश दे रहे हैं....** यह सिद्ध उपदेश दे रहे हैं। इसका अर्थ? कि आदर्श ले ले हमारा। हम सिद्धपद की पर्याय अन्तर शुद्ध उपयोग से प्राप्त की है। उसका लक्ष्य कर। यही हमारा उपदेश है। दूसरा उपदेश नहीं, विकल्प नहीं, वाणी नहीं। **शुद्धोपयोग की दृष्टि ही हितकारी है... 'उवइट्ठं इस्ट दिस्ट सुद्धं च'** शुद्ध उपयोग। अपने आत्मा में पहले निश्चय-निर्णय करे सम्यग्दर्शन और तदुपरान्त शुद्ध उपयोग से रमना, वही सिद्ध पर्याय की प्राप्ति है। हमने वह प्राप्त किया है तो हमारा उपदेश यह है। उपदेश का अर्थ हमारा लक्ष्य कर तो हमारा ध्येय जो हमने प्रगट किया, वह तुझे प्रगट होगा।

'अन्मोयं सहकारं' क्या कहते हैं? **इसी दृष्टि में परमानन्द का सहयोग है।** सहकार शब्द आया न? **इसी दृष्टि में परमानन्द का सहयोग है।** शुद्ध उपयोग की दृष्टि करने से उसमें परमानन्द का साथ है। साथ में आनन्द आता है शुद्ध उपयोग में। शुभाशुभ उपयोग में दु:ख होता है।

मुमुक्षु : आकुलता होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता है। शुभ-अशुभ परिणाम दोनों आकुलता है। आकुलता का साथ है उसमें। और अपना शुद्ध चैतन्यद्रव्य... पहले श्रद्धा, ज्ञान, तो पक्का करे। श्रद्धा, ज्ञान का ठिकाना नहीं, उसे सम्यग्दर्शन कहाँ से होगा? और चारित्र कहाँ से होगा? श्रद्धा का ही ठिकाना नहीं कि यह क्या चीज़ है और कैसे प्राप्त होती है? ऐसा होता है, ऐसा होता है, ऐसा होगा। दखल... दखल... दखल... अनादि काल से करता आया है। समझ में आया? जरा सा दूसरे का थोड़ा त्याग देखे तो कहे, ओहोहो! हम त्याग कर सकते नहीं, इतना तो त्याग किया इसने। अपने से तो अच्छे हैं। यहाँ तो कहते हैं, दृष्टान्त देते हैं।

बिगड़ा हुआ दूध वह फीकी छाछ से भी गयी-बीती है। दूध बिगड़ा हुआ हो न दो मण? बिगड़ा हुआ। छाछ होती है न छाछ? क्या कहते हैं? मठ्ठा—छाछ। मीठी छाछ में रोटी खायी जाती है। बिगड़े हुए दूध में नहीं चलती। और पीवे तो सब बिगड़ जाता है। लड्डू खाये हों, वे सब निकल जाते हैं। उल्टी हो जाती है। ऐसे त्यागी नाम धराकर जिसकी दृष्टि अत्यन्त विपरीत है, मान्यता विपरीत है, वह तो बिगड़ा हुआ दूध है और गृहस्थाश्रम में रहकर सम्यग्दृष्टि और सच्ची श्रद्धा करके रहता है, परन्तु वह मीठी छाछ है। समझ में आया? यह क्रम-क्रम से आगे चढ़कर केवलज्ञान लेगा। वह मोक्षमार्गी है। और बाह्य त्याग करके दृष्टि में विपर्यास—मान्यता में विपर्यास (वह) बिगड़ा हुआ दूध है। उल्टी करा दे ऐसी चीज़ है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि **इस दृष्टि में परमानन्द का सहयोग है।** यह किसलिए कहा? कि शुद्ध उपयोग में आनन्द आता है। शुभ-अशुभ उपयोग में आनन्द नहीं है। यह **शुद्धोपयोग रूपी उपदेश को जो अपने में धारण करते हैं...** ऐसा। जैसा सिद्ध में है, वैसा ख्याल में लेकर अपने में लक्षण बाँधते हैं कि मैं ज्ञान लक्षण से लक्ष्य होनेवाला हूँ। विकल्प आदि से प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। ऐसे **धारण करते हैं, उनके स्वभाव की साधना से कर्म गल जाते हैं।** लो! उनके कर्म गल जाते हैं अर्थात् नाश होते हैं। सिद्ध भगवान जो शुद्ध उपयोग स मुक्त हुए हैं, वही शुद्ध उपयोग मोक्ष के इच्छुकों को प्राप्त करना चाहिए। वही उनका सम्यक् उपदेश है। यह उपदेश शुद्धसार है या नहीं? यह उनका उपदेश शुद्ध है। जिसमें गड़बड़ी करे कि व्यहार से निश्चय होता है और निमित्त से निश्चय होता है और उससे ऐसा होता है, वह सब भगवान के घर का उपदेश नहीं है। उसके स्वच्छन्द के घर का उपदेश है। कुमार्ग को फैलानेवाला उपदेश है। मोतीरामजी!

४९७ (गाथा)।

दर्सति सव्व दर्सं, दर्सयंति सुद्ध ममल मल मुक्कं।
अन्मोयं न्यान सहकारं, उवएसं च कम्म गलियं च॥४९७॥

यह मोक्षमार्ग का अधिकार चलता है, हों! मोक्षमार्ग नाम है न इसमें? **सिद्ध भगवान सर्व पदार्थ को देखनेवाले हैं।** देखो, '**सव्व दर्सं, दर्सयंति**' '**सव्व दर्सं, दर्सयंति**'

सब लोकालोक, अनन्त आत्मा, सब देखते हैं। सर्व दृष्टा केवलदर्शन हो गया। ऐसा देखनेवाले सिद्ध भगवान हैं, तुम भी सब देखनेवाले हो, ऐसी अन्तर्दृष्टि करो। किसी का करनेवाले नहीं, ऐसा कहते हैं। किसी का करनेवाला या किसी का लेनेवाला नहीं। सर्व को देखनेवाले हैं। केवली सर्व को देखते हैं, जानते हैं कि सर्व है। बस, इतना। इसी प्रकार तुम भी दृष्टा हो, सर्व को देखनेवाले हो। किसी का करना या धरना, ऐसा करना, वैसा करना, ऐसा तुम्हारी चीज़ में है ही नहीं। ऐसा लक्ष्य ले लेवे हमारे से, सिद्ध भगवान कहते हैं। इसका नाम मोक्षमार्ग है।

'सव्व दर्सं, दर्सयंति' अब सर्व कहाँ से आया? यदि एक ही आत्मा हो तो सर्व को देखते हैं, ऐसा कहाँ से आया? समझ में आया? सर्व देखते हैं। तीन काल, तीन लोक को भगवान देखते हैं। तो दूसरी अनन्त चीज़ें हैं, अनन्त गुण हैं, अनन्त पर्यायें हैं, उन्हें देखते हैं या अकेले अपने को देखते हैं? समझ में आया? देखते हैं अपने को, परन्तु वह पर्याय में अपना और पर का सर्वदर्शी भाव हो गया। पूर्णानन्द की प्राप्ति में सर्वदर्शीभाव (प्रगट हो गया)। ऐसा ही तेरा स्वभाव है, ऐसा भगवान का उपदेश है।

'दर्सयंति सुद्ध ममल मल मुक्कं' **'दर्सयंति'** है न इसमें? **तथापि अपने स्वरूप से ही शुद्ध रागादि मल रहित आनन्दमय ज्ञानस्वभावी मोक्षमार्ग को दिखला रहे हैं।** देखो, **'सुद्ध ममल मल मुक्कं'** **'अन्मोयं न्यान'** ज्ञान स्वभाव **'दर्सयंति'** पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञान मेरा है, वह दर्शन में पहले लिया। पश्चात् आनन्द और ज्ञान लिये। पहले सर्वदर्शी, उसमें सर्व ज्ञान और पूर्ण आनन्द, ऐसे ज्ञानस्वभावरूपी **मोक्षमार्ग को दिखला रहे हैं।** लो! **'दर्सयंति'** ऐसे सिद्ध समान तेरे स्वभाव की दृष्टि और अनुभव करना, यही एक मोक्षमार्ग है, ऐसा भगवान दिखला रहे हैं। कहो, बराबर है? ओहोहो!

'उवएसं च कम्म गलियं च' यही शुद्ध उपदेश को ग्रहण करते हैं... लो! ऐसे शुद्ध उपदेश के सार को ग्रहण करते हैं, उनके कर्म नाश होते हैं। उनके कर्म पुण्य-पाप आदि कर्मबन्धन जो है, वह नाश पाता है। यह उपदेश ऐसा सार ग्रहण करे तो। मैं पूर्ण शुद्ध एक समय में अनन्त गुण रखनेवाला, सर्व को देखनेवाला-जाननेवाला, आनन्दवाला और वीर्यवाला। वीर्य तो पहले लिया था। वीर्य पहले आया था। पश्चात् ज्ञान, दर्शन

और आनन्द यहाँ विशेष लिया। अनन्त चतुष्टयधारी भगवान है, ऐसा तू लक्ष्य कर कि मैं भी अनन्त चतुष्टयधारी आत्मा हूँ। मैं देखनेवाला-जाननेवाला हूँ, कसी राग को करूँ और राग को छोड़ूँ, यह मेरे स्वभाव में नहीं है। समझ में आया? सिद्ध राग को छोड़ते नहीं और राग को करते नहीं। ऐसा अपना स्वभाव शुद्ध चिदानन्द का आश्रय करके राग छूट जाता है, वह अलग बात है। राग छोड़ना नहीं पड़ता। ऐसा मेरा स्वभाव है। ऐसा मोक्षमार्ग सिद्ध भगवान दिखलाते हैं। ऐसा उपदेश ग्रहण करो। सिद्ध भगवान की भक्ति का यही फल मिलना चाहिए। देखो, भक्ति का अर्थ यह है। भक्ति अर्थात् किसी को दे सकते नहीं। उनका बहुमान हुआ कि सिद्ध भगवान ऐसे हैं आदर्शरूप से, तो उसका फल ऐसा है कि मैं परमानन्दमय शुद्ध उपयोग में रमण करे। परमानन्दमय अपनी शुद्ध .... रमणता करे, जिससे हमारे कर्म नाश पावें। ऐसा सिद्ध भगवान का उपदेश है। उसे तुम आदर करो तो तुम्हारा भी कल्याण होगा। ऐसे उपदेश का शुद्ध सार उसे कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)